तित्थयर

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra
KOBA. (Dist. Gandhinagar) Pin. 382009.
Phone. 21342/21343. Cod. No. 02712.

6419

जैन भवन

चतुर्दश वर्ष : अप्रैल १९९१ : द्वादश अंक

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष १४ : अंक १२

अप्रैल १९९१

□

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी-२५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७

सूची

प्रबन्धकोश का ऐतिहासिक विवेचन ३५५

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र ३६४

संकलन ३७३

पुस्तक समीक्षा ३७५

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या ३७७

कायोत्सर्ग मुद्रा में पार्श्वनाथ
धन्यन्तरीर डांगा, ९वीं-१०वीं सदी

प्रबन्धकोश का ऐतिहासिक विवेचन

श्री प्रवेश भारद्वाज

यह ग्रन्थ राजशेखरसूरि द्वारा ई०सन् १३४९ में रचा गया। इसके उद्धरणों का परवर्ती जैन-प्रबन्धों में प्रयोग हुआ है। सोलहवीं शताब्दी का बल्लालकृत भोजप्रबन्ध भी इसका साक्ष्य है। प्रबन्धकोश का सर्वप्रथम उपयोग १८५६ में ए० के० फार्बस् महोदय ने रासमाला में किया है। इसके बाद १९वीं शताब्दी के अन्त में लिखी गई हेमचन्द्राचार्य की जीवनी में बुहलर महोदय ने इसका प्रभूत प्रयोग किया है। इसकी प्रसिद्धि से प्रेरित होकर इसके दो गुजराती भाषान्तर किए गए—एक मणिलाल नभुभाई द्विवेदी द्वारा और दूसरा हीरालाल रसिकदास कापड़िया द्वारा। १९२१ में हेमचन्द्रसभा, पाटन से और १९३१ में जामनगर से इसके संस्करण निकाले गये।

मुनि जिनविजय ने १९३५ में सिंघी जैन ग्रन्थमाला के अन्तर्गत प्रबन्धकोश का एक प्रामाणिक संस्करण निकाला। आर० एस० त्रिपाठी, गुलाबचन्द्र चौधरी, ए० के० मजुमदार, बी० जे० सांडेसरा प्रभृति विद्वानों ने राजशेखर को इतिवृत्तकार मानकर प्रबन्धकोश का अपने ग्रन्थों में यत्र-तत्र स्फुट प्रयोग किया है। चतुर्विंशतिप्रबन्ध पर नागरी-प्रचारिणी पत्रिका में शिवदत्त शर्मा का केवल एक लेख और जैन साहित्य का बृहद्-इतिहास, भाग ६ में लगभग आधा पृष्ठ प्रकाशित है। किन्तु आज तक प्रबन्धकोश का न तो हिन्दी या अंग्रेजी में अनुवाद हुआ और न ही उस पर कोई एक स्वतन्त्र ग्रन्थ प्रकाशित किया गया।

प्रस्तुत प्रबन्ध में प्रबन्धकोश का परम्परागत राजनैतिक, सामाजिक, भौगोलिक अथवा सांस्कृतिक अध्ययन न करके इतिहासशास्त्रीय दृष्टि से विवेचन किया गया है क्योंकि प्रबन्धकोश का ऐतिहासिक विवेचन जैन इतिहास के विकासक्रम की एक कड़ी है।

इतिहासशास्त्र की भृग्वांगिरस परिपाटी युगों से चली आ रही है जिसने प्राचीन इतिहासशास्त्रीय परम्पराओं को पूर्वमध्यकालीन परम्पराओं से युगबद्ध कर दिया है। जैन आगम-साहित्य में नेमि, पार्श्व, महावीर जैसे तीर्थङ्करों के जीवन-वृत्त के साथ ही श्रेणिक, कुणाल एवं सम्प्रति प्रभृति राजाओं की परम्परा भी सुरक्षित है। जिनसेन (८३७ ई०) ने आदिपुराण में इतिहास की परिभाषा प्रस्तुत की है। हेमचन्द्र ने अभिधानचिन्तामणि में पुरावृत्त,

प्रहेलिका, जनश्रुति, वार्ता, ऐतिह्य एवं पुरातनी को इतिहास का पर्याय माना है। जैन इतिहास लेखन की परिपाटी वहिकाओं (बहियों) के रूप में मिलती है। प्रबन्धचिन्तामणि में राजा विक्रमादित्य की धर्मवहिका का उल्लेख है। प्रबन्धकोश में स्पष्ट वर्णन है कि वहिकाएँ तीन प्रकार की होती थीं: (१) रोकड़ बही, (२) विलम्भ बही अर्थात् प्रदान बही और (३) परलोक बही या धर्म बही जिनमें इतिहास सुरक्षित रहा।

राजशेखरसूरि ने मेरुतुङ्ग द्वारा स्थापित इतिहास की परम्परा को आगे बढ़ाया। उसने जैन-प्रबन्धों को एक स्वतन्त्र शास्त्र का दर्जा दिया, जो इतिहास का साधन बना। उसने न केवल प्रबन्ध की परिभाषा दी अपितु इतिहास को साहित्य के घेरे से बाहर निकाला। उसने इतिहास को युद्धों और राजसभाओं की परिधि से निकालकर जन-सामान्य के धरातल पर लाकर खड़ा कर दिया। चौबीस प्रबन्धों में केवल सात राजवर्ग के प्रबन्ध हैं और शेष आचार्यों, कवियों या सामान्य जनों के हैं। राजशेखर ने अपने ग्रन्थ में उन्हीं प्रबन्धों का संग्रह किया है जिन्हें उसने अपने आचार्यों से श्रुत-परम्परा में प्राप्त किये थे। उसने इतिहास को परम्परा, स्रोत ग्रन्थों और यथाश्रुति पर आधारित माना।

प्रथम अध्याय में जैन प्रबन्ध का अर्थ और उसकी परिभाषा दी गई है। 'प्रबन्ध' शब्द का प्रयोग बराबर बदलता रहता है, जैसे कभी महाकाव्य, कभी लेख, कभी शोध-प्रबन्ध। परन्तु जैन-ग्रन्थकारों ने 'प्रबन्ध' शब्द का तकनीकी अर्थ में प्रयोग किया है। जैन-प्रबन्ध छोटे-छोटे अध्याय होते हैं और कई प्रबन्धों को मिलाकर जो ग्रन्थ तैयार किया जाता था उसे प्रबन्ध-ग्रन्थ कहते थे। गुजरात और मालवा में रचित जो जैन प्रबन्ध ग्रन्थ हैं, वे जैनग्रन्थकारों द्वारा तेरहवी से सोलहवीं शताब्दियों के बीच रचे गये हैं। ये ऐतिहासिक वृत्तान्त प्रायः सरल संस्कृत या प्राकृत गद्य और कभी-कभी पद्य में लिखे गए। हेमचन्द्र प्रथम विद्वान् थे जिन्होंने प्रबन्धकाव्य से भिन्न साहित्य के एक स्वतन्त्र रूप 'प्रबन्ध' के अस्तित्व को मान्यता दी। जैन-प्रबन्ध को सर्वप्रथम स्पष्टतः परिभाषित करने का श्रेय राजशेखर सूरि को है। वह कहते हैं कि आर्यरक्षित के पूर्व के चरित और उसके बाद के लोगों पर लिखे गये प्रबन्ध कहलाते हैं। उसने चौबीस प्रबन्धों में आचार्यों, कवियों, राजाओं एवं सामान्यजनों के उल्लेख किए हैं। यद्यपि आर्यरक्षित के पश्चात् भी 'चरित' लिखे गए हैं।

जैन-चरित और जैन-प्रबन्ध में अन्तर है। जैन-चरित अधिक पुराना है। जैसे—पउमचरिउ, त्रिशष्टिशलाकापुरुषचरित, कुमारपालचरित आदि। राजशेखर के अनुसार तीर्थङ्करों, चक्रवर्तियों आदि और आर्यरक्षित (निधन ३० ई०) तक के ऋषियों के जीवन वृत्तान्त 'चरित' कहलाते हैं और आर्य-रक्षित के बाद के जीवन-वृतान्त 'प्रबन्ध'। जैन-चरित, जैन-प्रबन्ध की अपेक्षा अधिक बृहद् होते हैं। एक ही पुरुष का 'चरित' एक ही ग्रन्थ में आबद्ध किया जा सकता है जबकि प्रबन्धों के एक ग्रन्थ में कई पुरुषों या घटनाओं के कई छोटे-छोटे प्रबन्ध गूंथे जाते हैं। जैन-चरित अर्द्ध-ऐतिहासिक और पौराणिक होते है जबकि जैन-प्रबन्ध अधिकांशतः ऐतिहासिक होते हैं। ए० एन० उपाध्ये के अनुसार विषय-वस्तु और रूप की दृष्टि से इन दोनों में अन्तर है। जैन-प्रबन्ध प्रायः गद्य में हैं जबकि जैन-चरित मुश्किल से गद्य में लिखे गए हैं।

जैन-प्रबन्ध सामान्यतया गुजरात और मालवा के श्वेताम्बरों द्वारा लिखे गए हैं जबकि जैन-चरित श्वेताम्बरों और दिगम्बरों दोनों द्वारा। जैन-प्रबन्धों में उपकथाएँ या अन्तर्कथाएँ कम है परन्तु जैन-चरितों में इनकी बहुलता के साथ-साथ विषयान्तर भी हो जाता है। भाषा की दृष्टि से जैन-प्रबन्ध सरल संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में अधिक लिखे गये हैं किन्तु परवर्ती जैन-चरित मुख्यतया संस्कृत में ही लिखे गए, जिनकी भाषा अधिक रूढ़िवादी और क्लिष्ट है। जैन-प्रबन्धों की पहुँच और जैन-प्रणाली ऐति-हासिक है जबकि जैन-चरितों में इनका अभाव पाया जाता है। जैन-प्रबन्धों में कारणत्व, साक्ष्य, स्रोत, तथ्य, कालक्रम आदि पर विशेष बल दिया जाता है।

द्वितीय अध्याय की रचना इतिहास-दर्शन के इस सूत्र पर आधारित है कि इतिहास के अध्ययन से पहले इतिहासकार का अध्ययन अनिवार्य होता है। रोजर फाउलर ने लिखा है कि 'ग्रन्थकार की जीवनी का ज्ञान उसकी कृतियों को समझने में सहायक सिद्ध होता है।' प्रबन्ध-कोशकार राजशेखर की जीवनी व कृतित्व पर आज तक एक पैराग्राफ भी नहीं लिखा हुआ है। उसके जीवन पर लिखने का यहाँ पर सर्वप्रथम प्रयास किया गया है। प्रबन्ध-कोश की ग्रन्थकारप्रशस्ति और खरतरगच्छबृहद्गुर्वावलि से विदित होता है कि राजशेखर का जन्म प्रश्नवाहनकुल की कोटिकगण की माध्यमिक शाखा में हुआ था। स्व-ख्याति वह नहीं चाहता था और उसने अपने विषय में ग्रन्थकार-प्रशस्ति के अतिरिक्त कुछ भी बतलाने का प्रयास नहीं किया।

अनामता भारतीय कला और संस्कृति की विशेषता है। प्रबन्ध-कोश के आन्तरिक साक्ष्यों से सिद्ध होता है कि राजशेखर श्वेताम्बर थे और उसका गच्छ हर्षपुरीय था। अभयदेवसूरि (१२वीं शती के पूर्वार्द्ध) उनके आध्यात्मिक पूर्वज थे। अभयदेवसूरि की परम्परा में तिलकसूरि हुए। राजशेखर इन्हीं तिलकसूरि के शिष्य थे।

प्रबन्धकोश के आन्तरिक साक्ष्यों एवं अन्य ग्रन्थों से सिद्ध होता है कि राजशेखरसूरि का अध्ययन बड़ा व्यापक था। प्रबन्धकोशागत ग्रन्थों के नामों से प्रतीत होता है कि राजशेखर ने जैन आगमसूत्रों का मंथन, अपने पूर्ववर्ती जैन-चरितों एवं जैन-प्रबन्धों का अध्ययन और ब्राह्मण-महाकाव्यों एवं पुराणों का भी अनुशीलन किया था। हेमव्याकरण, बृहद्वृत्ति, न्याय, तर्क आदि शास्त्रों की तीन बार आवृत्ति की। राजशेखर ने स्वरचित न्यायकन्दली-पञ्जिका में जिनप्रभसूरि को अपने अध्यापक रूप में स्मरण किया है। स्वयं राजशेखर ने न्यायकन्दली का अध्ययन किया था।

राजशेखर ने ग्यारह विद्याओं के नाम गिनाए हैं और उनके प्रयोग के भी उल्लेख किये हैं, जैसे गगनगामिनीविद्या, परकायाविद्या, सर्षपविद्या, हेम-सिद्धि-विद्या आदि। राजशेखर ने स्थान-स्थान पर रामायण और महाभारत के उल्लेख किये हैं जिससे यह प्रमाणित होता है कि वह इन महाकाव्यों से पूर्णतः परिचित थे।

जगतसिंह के पुत्र शाह महणसिंह की प्रेरणा से १३४६ ई० में राजशेखर ने प्रबन्धकोश की रचना की। राजशेखर की रुचि संगीत की ओर भी थी। उनके शिष्य सुधाकलश संगीत-शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् थे। उन्होंने १३४६ ई० मे संगीतोपनिषत्सारोद्धार की रचना की। राजशेखर ने प्रबन्धकोश में विभिन्न वाद्ययन्त्रों का उल्लेख किया है जिससे उनके संगीतज्ञान की पुष्टि होती है।

राजशेखर के अब तक सात-आठ ग्रन्थ प्रकाश में आए हैं : (१) प्रबन्ध-कोश, (२) न्यायकन्दलीपंजिका, (३) द्वयाश्रयकाव्य पर लिखी गयी वृत्ति, (४) षड्दर्शनसमुच्चय, (५) अन्तरकथासंग्रह, (६) कहानियों का संग्रह—जिसे कौतुककथा या विनोदकथा भी कहते हैं। (७) स्याद्वादकलिका, (८) उपदेश-चिन्तामणि। इसके अतिरिक्त उन्होंने शान्तिनाथचरित का संशोधन भी किया।

तृतीय अध्याय में ग्रन्थ-परिचय है। इसमें ग्रन्थ-रचना की राजनीतिक

और साहित्यिक पृष्ठभूमि का वर्णन किया गया है। रचनाकाल, स्थान, ग्रन्थ-शीर्षक, विविध संस्करणों, अनुवादों, रचना उद्देश्यों तथा ग्रन्थ की भाषा-शैली पर विचार किया गया है। आश्चर्य है कि राजशेखर ने संस्कृत और प्राकृत के साथ-साथ अरबी शब्दों का भी निःसंकोच प्रयोग किया है।

ग्रन्थ-परिचय के बाद दो अध्यायों में ग्रन्थगत ऐतिहासिक तथ्यों का वर्णन एवं मूल्यांकन किया गया है। इन २४ प्रबन्धों में दो प्रबन्धों—राजा वङ्कचूल तथा रत्नश्रावक के प्रबन्ध की ऐतिहासिक पहचान नहीं की जा सकी है। मुनि जिनविजय ने ग्रन्थ की प्रस्तावना में कहा है कि ऐतिहासिक दृष्टि से वङ्कचूल की कथा और कश्मीर निवासी संघपति रत्नश्रावक की कथा अज्ञात है। राजशेखरसूरि के अनुसार पारेत जनपद की सीमा पर चर्मण्वती नदी के तट पर ढींपुरी नगरी थी। वहाँ के राजा विमलयश ने अपने राजकुमार पुष्पचूल को निर्वासित कर दिया। कालान्तर में वह सिंहगुहापल्ली का पल्लीपति बन गया और सुस्थिताचार्य द्वारा बतलाये गये चार नियमों से उदारमना राजा बना। इस अध्याय में पारेत जनपद, चर्मण्वती नदी और रन्ती नदी का समीकरण किया गया है। ढींपुरी तीर्थ की पहचान मालवा की धमनार पहाड़ी से की गयी है। वहाँ अनेक जैन गुफाएँ हैं और बूँदी से कोटा के बीच वालौरी, धमनार की पहाड़ी, चम्बल नदी, झालरापाटन, चन्द्रावती आदि स्थान हैं।

वङ्कचूल के उदाहरण वक्कचूड़कहा और गुजराती काव्यों में आते हैं। रासमाला में चूड़चन्द्र का उल्लेख है। फोर्ब्स उसे यदुवंशी बतलाता है। रूसी पौराणिक शौर्य कथा-साहित्य में वङ्क नामक विधवा-पुत्र के विषय में मिले गीत एक राजकुमारी की कथा पर आधारित हैं। किन्तु ध्वन्यात्मक साम्य के अतिरिक्त चूड़चन्द्र या रूसी वङ्क का वङ्कचूल से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। वस्तुतः वङ्कचूल ढींपुरी के राजकुमार पुष्पचूल का विद्रूपित नाम था।

राजशेखर ने वङ्कचूलप्रबन्ध को सातवाहनप्रबन्ध और विक्रमादित्यप्रबन्ध के बीच में स्थान दिया है। इसलिए वङ्कचूल सम्भवतः विक्रमादित्य के पहले अथवा वरिष्ठ समकालीन था। वङ्कचूल प्रथम शताब्दी के पहले का राजपुरुष था; क्योंकि उसे उज्जैनी के विद्वान् राजा का सामन्त और सुस्थिताचार्य का समकालीन कहा गया है। सुस्थिताचार्य का समकालीन चन्द्रगुप्त, मौर्य साम्राज्य-संस्थापक चन्द्रगुप्त नहीं है, अपितु दशरथ मौर्य का भाई और

उत्तराधिकारी सम्प्रति (२१६-२०७ ई० पू०) हो सकता है क्योंकि कई इतिहासकार सम्प्रति को मौर्य वंश का द्वितीय चन्द्रगुप्त मानते हैं।

सम्प्रति ने अशोक, कुणाल और दशरथ तीनों के शासन-कार्यों में सहायता की थी। उसे पाटलिपुत्र और उज्जैन दोनों में शासन करते हुए दर्शाया गया है। अजमेर, कुम्भलमेर और गिरनार में उसके द्वारा निर्मित और महावीर को समर्पित मन्दिरों के अवशेष आज भी पाये जाते हैं। अभिलेख और मुद्राओं से जैन-धर्म की ओर उसकी रुझान ज्ञात होती है। सम्प्रति के एक सिक्के पर एक ओर ऊपर-नीचे सम्प्र और दी शब्द लिखा है दूसरी ओर ऊपर-नीचे और चिह्न हैं। किसी-किसी सिक्के में—के नीचे—(स्वस्तिक) चिह्न बने हैं। सामान्यतः मौर्य सिक्कों पर ऊपर से नीचे—और—चिन्ह हैं। जैन प्रभु के सामने यह निशान बनाते हैं। इससे यह समर्थित होता है कि सम्प्रति 'जैन अशोक' और द्वितीय' चन्द्रगुप्त कहलाने का अधिकारी था और वह सुस्थिताचार्य और वंकचूल का समकालीन था। (मार्डन रिव्यू)

सम्प्रति ने उज्जयिनी के समीप ढींपुरी नगरी में विमलयश को अधिकारी नियुक्त किया था। प्रस्तुत प्रबन्ध में अति उत्साह के कारण उसे राजा कहा गया है। विमलयश राजसत्ताधारी राजा भले ही न हो किन्तु वंकचूलप्रबन्ध के अनुसार सिंहगुहापल्ली का पल्लीपति अवश्य था और उसकी स्थिति आसपास के बीहड़ और पर्वतीय इलाकों में किसी स्थानीय राजा से कम न थी। पहली राजधानी में गुरु सुहस्ति ने सम्प्रति को जैन-धर्म में दीक्षित किया और दूसरी राजधानी के समीप शिष्य सुस्थित ने वंकचूल को।

वंकचूल द्वारा कामरूप-विजय पर प्रश्न चिह्न लगाना पड़ता है। प्रबन्धकोश में वर्णन है कि वंकचूल को उज्जयिनी के राजा का सामन्त बन जाने के बाद कामरूप विजय के लिए जाना पड़ा। अन्य ग्रन्थों में वहाँ के राजा का नाम दुर्धर है। किन्तु ढिंपुरी से असम की अत्यधिक भौगोलिक दूरी और यातायात के मन्दगामी साधनों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि राजशेखर ने कामरूप-विजय की कल्पना जैनधर्म के महत्त्व को बढ़ाने के लिए की थी क्योंकि प्रबन्धकार शक्तिपूजा के एक प्रसिद्ध केन्द्र पर जैन धर्मावलम्बी की विजय दर्शाना चाहता था।

सम्प्रति-कालीन सुस्थिताचार्य के चार महीनों के आपात-प्रवास से राजा वंकचूल का हृदय-परिवर्तन नहीं हुआ, किन्तु उनके द्वारा बतलाये गये चार

नियमों ने उसकी क्रूरता को समाप्त कर उसे उदारमना राजा बना दिया। इस प्रकार राजशेखर ने वंकचूल को राजवर्ग में सम्मिलित करने का औचित्य भी दिया।

कश्मीर में नगरों को बसाये जाने की परम्परा कुषाणकाल में स्पष्ट दीख पड़ती है जैसे हुष्कपुर, जुष्कपुर और कनिष्कपुर। सातवाहन पुलमावि 'द्वितीय' ने एक नये शहर "नवनगर" की स्थापना की और "नवनगर स्वामी" की उपाधि धारण की। दक्षिण के होयसल नरेश नरसिंह 'प्रथम' (११४१-७३ ई०) के चार मुख्य सेनापतियों में हुल्ल जैनधर्म का अनन्य भक्त था। हुल्ल ने श्रवण-वेल्गोल में चतुर्विंशति जिनालय का निर्माण (संभवतः ११५९ ई० में) तथा तीन जैन केन्द्रों का जीर्णोद्धार कराया था। संभवतः उसने उत्तर में भी जिनालयों का निर्माण कराया और उसी के नाम पर कश्मीर में एक नया नगर "नवनगर" बसाया गया जो "नवहुल्लनगर" के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

प्रबन्धकोश में पारस्परिक संघर्ष, असन्तोष, वर्ग-संघर्ष आदि के वर्णन मुख्यतः नौ प्रबन्धों में आते हैं। जैन होते हुए भी राजशेखर ने वर्ग-संघर्ष सामूहिक हत्याकाण्ड, युद्ध, हिंसा आदि का वर्णन किया है। ये वर्ग-संघर्ष भौतिकवादी कम और आध्यात्मिक अधिक हैं। तुगलक साम्राज्य के हृदय-प्रदेश दिल्ली में रहते हुए राजशेखर ने जिन वर्ग संघर्षों का वर्णन किया है वे उसके सत्यानुराग और इतिहास-प्रियता के प्रतीक हैं।

यद्यपि प्रबन्धकोश की कतिपय तिथियाँ सूक्ष्म-गणना में किंचित त्रुटिपूर्ण हैं तथापि यह स्पष्ट है कि राजशेखर ने कालक्रम को इतिहास का एक अभिन्न अंग माना है और उसका प्रायः निर्वाह किया है। उसने जैन-प्रबन्धों को साहित्य से पृथक करके इतिहास का दर्जा प्रदान किया।

छठें अध्याय में इतिहास-दर्शन के प्रमुख सत्वों के आधार पर स्रोत, साक्ष्य, परम्परा, कारणत्व, कालक्रम आदि का विवेचन किया गया है। इसी में प्रबन्धकोश के गुण-दोषों का विवेचन करते हुए ग्रंथकार की सीमाओं का भी उल्लेख किया गया है।

ए० के० मजुमदार ने राजशेखर को निकृष्टतम इतिवृत्तकार कहा है और वस्तुपाल तेजपाल प्रबन्ध के कई दोष दर्शाये हैं :

(१) राजशेखर को वाघेलों के प्रारम्भिक इतिहास का कम ज्ञान था और वह अर्णोराज को भीम (द्वितीय) का उत्तराधिकारी बना देता है।

(२) वह सोमेश्वर के विचारों का अनुकरण करता है।

(३) वह त्रिभुवनपाल को पूर्णतया विस्मृत कर जाता है।

(४) दिल्ली के सुरत्राण मोजदीन की सेना को वस्तुपाल ने जो शिकस्त दी, वह सन्देहास्पद है। राजशेखर वस्तुपाल का यश-वर्णन सत्य का दांव लगाकर करता है। मजुमदार महोदय उदाहरण देते हुए कहते हैं कि मेरुतुङ्ग ने एक श्लोक तेजपाल के मुख से कहलवाया है जिसे राजशेखर उद्धृत करता है और कहता है कि वीरधवल के निधन के उपरान्त वस्तुपाल ने उस श्लोक को पढ़ा।

"आयान्ति यान्ति च परे ऋतवः क्रमेण....."

जहाँ तक अर्णोराज का सवाल है राजशेखर ने अपने समूचे ग्रन्थ में उसका केवल एक बार उल्लेख किया है। राजशेखर सही कहता है कि वह अर्णोराज चौलुक्यवंशीय था न कि चाहमानवंशीय। राजशेखर ने अर्णोराज को न किसी का उत्तराधिकारी कहा है और न बनाया है। प्रबन्धकोश से यह स्पष्ट है—"तदनु• मूलराज-चामुण्डराज-वल्लभराज-दुर्लभराज-भीम-कर्ण-जयसिंहदेव-कुमारपाल-अजयपाल लघुभीम-अर्णोराजैः चौलुक्यः सनाथीकृतः।"

"सनाथीकृतः" का तात्पर्य किसी भी स्थिति में उत्तराधिकृत नहीं हो सकता है। "सनाथीकृत" का अर्थ हुआ कि इन चौलुक्यों ने (गुर्जरधरा को) सुरक्षा प्रदान की। अतः राजशेखर की कालक्रमीय सटीकता की प्रशंसा करनी चाहिये। जिस तारतम्य से उसने इन चौलुक्यों का उल्लेख किया है वह कालक्रम की दृष्टि से सही है। मजुमदार ने दूसरी भूल यह की है कि वे अर्णोराज के निधन को भीम (द्वितीय) के शासनारम्भ में रखते हैं। परन्तु प्रबन्धचिन्तामणि के अनुसार अर्णोराज ने कुमारपाल से भीम (द्वितीय) तक चौलुक्यों के सामन्त के रूप में शासन किया। मजुमदार के मत के विपरीत समकालिक वसन्तविलास में उल्लेख है कि अर्णोराज ने पक्ष में रहते हुए राज्य की रक्षा की। अतः राजशेखर द्वारा अर्णोराज को चौलुक्य कहना और उसके द्वारा गुजरात की सुरक्षा करने के कथन की पुष्टि हो जाती है। मजुमदार का यह कथन कि राजशेखर को वाघेलों के प्रारम्भिक इतिहास का कम ज्ञान था, भ्रान्तिपूर्ण है। राजशेखर की इतिहासप्रियता और तथ्यों के प्रति ईमानदारी का प्रमाण उसका यह कथन है :

"ऐसा प्रबन्धचिन्तामणि से ज्ञात होता है। चर्वित-चर्वण करने से क्या लाभ? कतिपय नवीन प्रबन्धों को प्रकाशित करता हूँ।"

मजुमदार ने प्रबन्धकोश से उद्धरण दिया है—'अर्णोराज के बाद पहले लवणप्रसाद और बाद में वीरधवल राजा हुए।' किन्तु मूल में लिखा है :

'सम्प्रति युवा पिता-पुत्रौ लवणप्रसाद-वीरधवलौ स्तः।' अर्थात् इस समय

दोनों पिता-पुत्र, लवण प्रसाद और वीरधवल थे। यदि इसे पूर्वोक्त वाक्य के तारतम्य में पढ़ा जाय तो अर्थ निकलेगा कि सम्प्रति लवणप्रसाद और वीरधवल (गुर्जरधरा को) सुरक्षा प्रदान करने वाले थे।

मजुमदार साहब का तीसरा आरोप है कि राजशेखर त्रिभुवनपाल को पूर्णतया विस्मृत कर जाता है। किन्तु यदि मूल ग्रन्थ को पढ़ा जाय तो यह आरोप अनर्गल प्रतीत होगा। पूर्व-उद्धृत मूल पंक्ति में चौलुक्यों में राजशेखर ने केवल त्रिभुवनपाल का नहीं प्रत्युत बाल मूलराज का भी नाम नहीं दिया है। मूलराज 'द्वितीय' (११७६-७८ ई०) का भी राजशेखर ने उल्लेख नहीं किया है। राजशेखर उनका नाम गिनाना चाहता था जिन्होंने गुर्जरधरा को सुरक्षित रखा। त्रिभुवनपाल ने चौलुक्य राज्य खोया और स्वयं अप्रसिद्ध रहा। वह धर्म और साहित्य का पोषक भी नहीं था।

चौथे आरोप के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि यह प्रथम मोजदीन सुरत्राण 'इल्तुतमिश' हो सकता है जिसने १२३४ ई० में भिलसा जीता, उज्जैन को लूटा और महाकाल मन्दिर की तोड़फोड़ की। सम्भवतः उसने गुजरात पर आक्रमण के लिए कोई छोटी टुकड़ी भेजी हो, जिसका वस्तुपाल ने सफलतापूर्वक मुकाबला किया। राजशेखर ने यह नहीं कहा है कि उक्त श्लोक की रचना वस्तुपाल ने की। उसका कहना है कि वीरधवल के निधन के बाद वस्तुपाल ने उक्त श्लोक को पढ़ा। प्रबन्धचिन्तामणि और प्रबन्ध-कोश में श्लोक एक ही हैं और निधन के बाद पढ़ा गया बताया जाता है। अन्तर इतना है कि प्रबन्ध-चिन्तामणि में तेजपाल के मुख से श्लोक कहलवाया गया है और प्रबन्धकोश में वस्तुपाल से। यह कोई बहुत बड़ा दोष नहीं है।

सातवें अध्याय में प्रबन्धकोश की अन्य प्रमुख प्रबन्ध ग्रन्थों यथा प्रभावकचरित, प्रबन्धचिन्तामणि, पुरातनप्रबन्धसंग्रह, विविधतीर्थकल्प और भोज-प्रबन्ध से तुलना की गयी है। ऐतिहासिक ग्रन्थों में विक्रमाङ्क-देवचरित और राजतरंगिणी से तुलना की गयी है। प्रबन्ध कोश के ऐतिहासिक विवेचन में उसे एक नये दृष्टिकोण से परखा गया है। इसके वस्तुनिष्ठा विवेचन और विश्लेषण का यह प्रथम विनम्र प्रयास है। यह ग्रन्थ इतिहास व इतिहास-दर्शन की कसौटी पर खरा उतरता है। निष्कर्ष यह है कि ऐतिहासिक तथ्यों एवं इतिहास-दर्शन के प्रमुख तत्वों की दृष्टि से राजशेखरसूरि के प्रबन्धकोश में वर्णित प्रबन्ध ऐतिहासिक हैं और यह ग्रन्थ इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है।

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

वीरभद्र ने भावाभिव्यक्ति सहित अल्प समय में ही वह चित्र अंकित कर अनंगसुन्दरी के हाथों में दे दिया। उस चित्र में सूक्ष्मातिसूक्ष्म सही भावाभिव्यक्ति देखकर अनंगसुन्दरी बोली, चित्रांकन के वैदग्ध्य से भावाभिव्यक्ति सुन्दर हुयी है। उसकी आँखों से अश्रु झर रहे हैं, मुख मलिन हो गया है, ओष्ठों ने विस्मृत-से पद्मनाल को पकड़ रखा है, कंधा लटक गया है, पंख शिथिल हो गया है। इसकी इसी आकृति ने विरह-वेदना को प्रस्फुटित कर दिया है, वर्णन करने की आवश्यकता ही नहीं है। तदुपरान्त विनयवती को उलाहना के स्वर में बोली, बहिन, इसे इतने दिनों तक यहाँ क्यों नहीं लायी? ऐसे कलाविद को गोप्य वस्तु की भाँति घर में ही क्यों छिपा रखा था?

वीरभद्र ने बोला, गुरुजनों के भय से ही मेरी बहिन मुझे इतने दिनों तक यहाँ नहीं लायी और कोई कारण नहीं है। अनंगसुन्दरी ने उससे कहा, तुम अपनी बहिन के साथ अब रोज यहाँ आना। फिर विनयवती की ओर देखकर बोली इसका नाम क्या है? वीरभद्र ने झट से उत्तर दिया, मेरा नाम है बीरमती। राजकन्या ने पुनः पूछा, क्या तुम अन्य कला भी जानती हो? इस बार विनयवती ने कहा, वह तो तुम स्वयं परख कर देखो। दूसरे के कहने पर विश्वास करना उचित नहीं है। अनंगसुन्दरी आनन्दित होकर बोली—ऐसा ही होगा। फिर उन्हें आप्यायित कर विदा किया।

घर आकर वीरभद्र ने स्त्री वेश का परित्याग किया और पिता के प्रति श्रद्धावश दुकान पर गया। श्रेष्ठी ने स्नेहयुक्त स्वर में कहा—इतनी देर तुम कहाँ थे? यहाँ लोग बार-बार आकर तुम्हारे बारे में पूछ रहे थे। वीरभद्र बोला, पिताजी, मैं उद्यान में गया था। श्रेष्ठी बोले, ऐसा ही है तो ठीक ही है।

दूसरे दिन सर्वकलाविद् वीरभद्र उसी रूप में राजकुमारी के पास गया। अनंगसुन्दरी उस समय वीणा बजा रही थी। वीरभद्र ने उससे कहा—देवी, तारों के मध्य कहीं सिर का केश अटका हुआ है। अतः शुद्ध स्वर निकल नहीं

रहा है। अनंगसुन्दरी ने कहा यह तुमने कैसे जाना ? वीरभद्र ने उत्तर दिया। आप जिस राग को बजा रही थीं उस राग को सुनते ही समझ गयी। तब अनंगसुन्दरी ने वीणा उसके हाथों में दी। सत्यज्ञाता वीरभद्र ने तब तारों को खोल डाला। हृदय से तीर निकालने की भाँति वीणा के मध्य भाग से एक केश निकालकर, राजकुमारी को दिखाया। राजकुमारी के तो विस्मय की सीमा ही नहीं रही। उसने उस तार को पलट कर नया तार लगाया और तुम्बरु से भी अधिक सुन्दर बजाकर सुनाया। सारणी से श्रुति को स्फुट करने वाला स्वर और धातु व व्यंजन को स्पष्ट करनेवाली तान व कूट तान उत्पन्न कर द्रुत और विलंबित वादन से कानों के लिए अमृत तुल्य राग व रस युक्त स्वर-लहरी से उसने अनंगसुन्दरी और उसकी परिचारिकाओं को मुग्ध कर डाला। वे चित्र खिंचित-सी उस स्वर-लहरी को सुनने लगीं। हरिणी को संगीत सुनाकर ही आबद्ध किया जाता है। उस वीणा वादन को सुनकर राजकुमारी सोचने लगी—ऐसे सुयोग्य कलाविद को खोज पाना तो देवों के लिए भी असाध्य है। इसके बिना तो मेरा जीवन ही व्यर्थ है। मूर्ति सम्पूर्ण होने पर भी माल्य भूषित होकर ही सुन्दर लगती है।

इसी भाँति वीरभद्र ने समय-समय पर अपनी अन्य कलाओं का भी परिचय देकर राजकन्या के हृदय को पूर्ण रूप से अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। जब वीरभद्र ने निश्चित रूप से समझ लिया कि अनंगसुन्दरी उस पर आसक्त हो गयी है तब उसने एक दिन श्रेष्ठी को गुप्त रूप से कहा—विनयवती के साथ स्त्री-वेश में मैं अनंगसुन्दरी के यहाँ राजमहल में कई बार गया हूँ। भयभीत नहीं हों। मैंने ऐसा कुछ अनुचित नहीं किया है जिससे आपकी क्षति हो बल्कि आप तो उससे सम्मानित ही होंगे। राजा यदि अपनी कन्या को मेरे लिए आपको देना चाहें तो आप तुरन्त सम्मत मत होइएगा। कारण अधिक आग्रह ही सम्मान लाता है। श्रेष्ठी बोले, यह तो तुम ही अधिक जानते हो कारण हम लोगों में तुम्हीं बुद्धिमान हो। किन्तु एक बात तुम्हें कहूँगा—इससे कहीं तुम विपद में न पड़ जाओ। वीरभद्र ने कहा पिताजी, इसके लिए आप चिन्तित न हों। आप शीघ्र ही अपने इस पुत्र की योग्यता और चारित्र का परिचय प्राप्त करेंगे। यह तो तुम्हीं जानों कहकर श्रेष्ठी चुप हो गए।

राजा रत्नाकर के सभासदों में इस प्रकार आलोचना होने लगी—श्रेष्ठी शंखके घर ताम्रलिप्ति से एक नवयुवक आया है। नानाविध कलाओं का

प्रदर्शन कर वह लोगों का मन हर लेता है। विदेशागत होने से उसके वंश का परिचय तो नहीं मालूम किन्तु आकृति से वह उच्चकुलजात लगता है। राजा ने मन ही मन सोचा—यह नवयुवक रूप में कामदेव-सा और सुशील सुदर्शन कलाविद् एवं बुद्धिमान भी है। यदि वह मेरी कन्या से विवाह करने को राजी हो जाए तब तो यही कहा जाएगा योग्यों को मिलाने में विधाता कंजूसी नहीं करता।

उधर एक दिन सुयोग पाकर वीरभद्र ने अनंगसुन्दरी से कहा—तुम भोग सुख से इतनी विरक्त क्यों हो? अनंगसुन्दरी बोली—भोग सुख कौन नहीं चाहता? किन्तु योग्य पति को ढूंढकर पाना सहज नहीं है। काँच के साथ अंगूठी में जड़ जाने से अधिक अच्छा हीरे के लिए अकेला रहना ही है। जिस प्रकार सामुद्रिक कुम्भी आदि से पूर्ण नदी से जलहीन नदी ही अच्छी होती है, तस्करपूर्ण गृह से शून्य गृह, विष वृक्ष पूर्ण उद्यान से वृक्ष हीन उद्यान, उसी प्रकार कुलहीन कलाहीन दुर्गुणी स्वामी से तो तरुण और सुन्दरी होने पर भी अविवाहित रहना ही अच्छा है। हे सखि, अब तक मैं अपने लिए उपयुक्त वर खोज नहीं पायी हूँ। कलाहीन स्वामी को वरण कर मैं क्यों सबके लिए हास्यास्पद बनूँ?

वीरभद्र बोला, ऐसा मत कहो कि तुम्हारे योग्य या तुम से अधिक कलाविद् वर नहीं है। क्या पृथ्वी पर रत्नों का अभाव है? आज ही तुम्हारे योग्य स्वामी मैं चुन दूंगी। नहीं तो फिर जैसी तुम्हारी रूचि—अन्य कोई तुम्हें सुखी नहीं कर पाएगा। अनंगसुन्दरी बोली, तुम मुझे आशा बँधा कर मेरे मुख से बात बाहर निकालना चाहती हो या झूठ बोल रही हो? यदि तुम सत्य कह रही हो तो बताओ ऐसा कौन है जो मेरी कला, यौवन और सौन्दर्य को तृप्त कर सकता है?

अनंगसुन्दरी के ऐसा कहने पर वीरभद्र ने स्वयं का परिचय दिया। अनंगसुन्दरी तब बोली, मैं तुम्हारी अनुगत हूँ, तुम्हीं मेरे स्वामी हो। वीरभद्र ने कहा, तब ठीक है। इसे लेकर कोई बात चीत मत करना। मैं भी आज से तुम्हारे यहाँ नहीं आऊँगा। तुम अपने पिता से कहो—आप श्रेष्ठी शंख को बुलाकर कहें—मैं वीरभद्र को अनंगसुन्दरी देना चाहता हूँ। अनंगसुन्दरी के सम्मत होने पर वीरभद्र स्व-आवास को लौट गया।

अनंगसुन्दरी माँ से जाकर बोली, माँ, इतने दिनों तक योग्य पति नहीं ढूंढ़ पाने के कारण विवाह करने से इन्कार कर तीर से बींधने की तरह मैंने

आपको कष्ट दिया। अब मैंने शंख पुत्र वीरभद्र को जो कि रूप, कला एवं तारुण्य आदि से समन्वित है उपयुक्त वर खोज लिया है। उसके साथ आज ही मेरा विवाह कर दें। तुम पिताजी से जाकर कहो वे शंख को बुलवाएँ और कहें वे मुझे वीरभद्र को देना चाहते हैं। यह सुनकर आनन्दमना रानी तत्क्षण जाकर राजा से बोली, सौभाग्यवश अपनी लड़की के लिए आपको आज वर मिल गया है, इसके लिए अजस्र धन्यवाद ! अनंगसुन्दरी ने स्वयं कहा है कि श्रेष्ठी शंख का पुत्र उसके लिए योग्य वर है। राजा ने कहा यह संवाद लेकर तो तुम मेरे सन्मुख कामधेनु या चिन्तामणि रत्न की तरह उपस्थित हुयी हो। इतने दिनों तक प्रतीक्षा कर उसने जिस वर को चुना है उससे उसकी बुद्धिमत्ता और धैर्य ही प्रकाशित हुआ है।

राजा के द्वारा आमंत्रित होकर श्रेष्ठी शंख कई वणिक पुत्रों सहित राजा के यहाँ गए और उन्हें प्रणाम किया। राजा ने श्रेष्ठी शंख से कहा, आपके यहाँ ताम्रलिप्त से कोई युवक आया है। सुना है कि वह समस्त कलाओं में दक्ष है, असाधारण रूपवान है, लावण्य युक्त और अनेक गुणों का आकर है। शंख बोले, महाराज, उसके गुणों को तो सर्वसाधारण जानते हैं। राजा ने कहा, वह आपकी आज्ञा का पालन करता है कि नहीं करता ? श्रेष्ठी ने कहा, आप ऐसा क्यों कह रहे हैं ? उसके गुणों के कारण सब उसी की बात मानते हैं। राजा ने कहा, मैं अनंगसुन्दरी को उसे देना चाहता हूँ। योग्य के साथ योग्य का मिलन हो। श्रेष्ठी ने कहा, महाराज आप हमारे राजा हैं, हम आपकी प्रजा हैं। आप द्वारा रक्षित हैं। वैवाहिक सम्बन्ध और बन्धुत्व समपर्याय के लोगों में होना ही उचित है। राजा बोले, तब क्या आप प्रकारान्तर से मेरा अनुरोध अस्वीकृत कर रहे हैं ? दुविधा में मत पड़िए। मेरी आज्ञा का पालन करिए। जाइए और अभी विवाह का आयोजन करिए।

राजा की आज्ञा शिरोधार्य कर श्रेष्ठी घर लौट आए और वीरभद्र को सारी बात कह सुनायी। तदुपरान्त शुभदिन और शुभक्षण में महा धूमधाम के साथ वीरभद्र और अनंगसुन्दरी का विवाह सम्पन्न हुआ। दिन-प्रतिदिन उनका प्रणय वर्द्धित होने लगा। पात्र-पात्री जब परस्पर एक दूसरे का चयन करते हैं तब प्रणय की वृद्धि होती रहती है। जैन धर्म की शिक्षा देकर क्रमशः वीरभद्र ने अनंगसुन्दरी को जैन श्राविका बना लिया। इहलोक का सम्बन्ध परलोक में भी सुखकर हो ऐसा ही करना चाहिए। वीरभद्र ने अर्हत् और

समवसरण का चित्र बनाकर अनंगसुन्दरी को दिया और उसे इससे सम्बन्धी परिज्ञान कराया।

एक दिन वीरभद्र ने सोचा, वह मुझ पर प्रेमवती है किन्तु चंचलमना नारियों के प्रेम में स्थिरता नहीं होती। ठीक है, इसकी मुझे परीक्षा लेनी होगी। ऐसा सोचकर उसे एक दिन अत्यन्त समीप पाकर वीरभद्र बोला— प्रिये, तुमसे अधिक प्रिय मुझे कोई नहीं है। फिर भी तुम्हें छोड़कर एक बार मुझे देश जाना होगा। कारण मेरे माता-पिता इस लम्बे विच्छेद से कातर हो गए हैं। मुझे उन्हें सान्त्वना देनी होगी। तुम यहीं रहो। मैं शीघ्र ही लौट आऊँगा। तुम्हें छोड़कर मैं कहीं भी अधिक दिनों तक नहीं रह सकूँगा।

विवर्ण बनी अनंगसुन्दरी बोली, तुमने जो कुछ कहा वह ठीक ही है किन्तु यह सुनने मात्र से ही मुझे तो लगता है, मेरे प्राण निकलने वाले हैं। लगता है तुम्हारा हृदय अत्यन्त कठोर है, तभी तो तुम यह बात मुझसे कह सके। तुम्हारे जैसी मैं भी होती तो तुम्हारे इस बात को सहन कर सकती।

प्रिये, क्रोध मत करो। तुम्हें साथ लेकर जाने के लिए ही मैंने तुम्हें यह बात कही थी।

तब वीरभद्र ने अनंगसुन्दरी को साथ लेकर स्वदेश लौट जाने की बात राजा से निवेदित की। नहीं चाहने पर भी अन्ततः कन्या सहित जमाता को देश जाने की अनुमति राजा को देनी पड़ी। कन्या और जमाता का विच्छेद तो सबके लिए दुःख का कारण होता है। तब वे दोनों जलपथ से जाने के लिए जहाज पर चढ़े। जो साहसी हैं उनके लिए जलपथ और स्थलपथ समान ही हैं। अनुकूल वायु में प्रत्यंचा से छूटे तीर की भाँति या नीड़ त्यागी पक्षी की तरह जहाज द्रुतगति से आगे बढ़ने लगा। जब जहाज बहुत दूर चला गया तब एक दिन प्रलयकालीन झंझावात-सा भयंकर तूफान आया और हाथी जैसे सहज ही विचाली का पुलिन्दा उठा लेता है वैसे ही उसने जहाज को उठा लिया। बार-बार उठने-गिरने से और तीन दिनों तक इधर-उधर प्रवाहित होते रहने से एक पहाड़ की चोटी से टकराकर जहाज पक्षी के अण्डे की तरह टूटकर चूर-चूर हो गया। जहाज टूटने के साथ-साथ ही अनंगसुन्दरी के हाथ काठ का एक तख्ता लग गया। जिसकी आयु होती है उसकी मृत्यु नहीं होती। उसी कारण तख्ते की सहायता से अनंगसुन्दरी पाँच दिन और पाँच रात्रि तक हंसिनी की तरह प्रवाहित होती अरण्य संकुल एक तट पर जा गिरी। आत्मीय स्वजनों से बहुत दूर विदेश यात्रा में जल में डूब जाने के

फलस्वरूप पति और सम्बल खोकर तरंगों के आघात को सहन कर क्षुधा तृष्णा से कातर जब वह तट पर जा पड़ी तो वह जलहीन मीन की तरह मूर्च्छित हो गयी। उसी अवस्था में उसे एक दयालु तरुण तापस ने देखा और कन्धे पर उठाकर आश्रम में ले गया।

अनंगसुन्दरी की चेतना लौटी। आश्रम के कुलपति ने उसे आश्वासन दिया—माँ, तुम हमारे यहाँ निर्भय होकर रहो।

तापसों की परिचर्या से अनंगसुन्दरी शीघ्र ही स्वस्थ हो गयी और वहाँ पितृगृह की तरह रहने लगी। कुलपति सोचने लगे—वह यदि यहाँ रहेगी तो अपने असाधारण रूप के कारण तापसों के ध्यान में विघ्न स्वरूप होगी। ऐसा सोचकर वृद्ध कुलपति उससे बोले—यहाँ से कुछ दूर पर पद्मिनी खण्ड नामक एक नगर है। वहाँ के अधिवासी अधिकांशतः सज्जन और धनी हैं, तुम वहाँ जाकर रहो। कारण वहाँ रहने से तुम स्वतन्त्र रूप से रहोगी और वहाँ तुम्हारे पति का भी तुमसे साक्षात्कार हो सकता है। वृद्ध तापसगण तुम्हें वहाँ छोड़ आयेंगे।

कुलपति के आदेश से अनंगसुन्दरी वृद्ध तापसों के साथ हंसिनी जैसे कमल खंड में जाती है वैसे ही पद्मिनी खंड में चली गयी। हम नगर में प्रवेश नहीं करते कहकर तापस उसे नगर के द्वार पर छोड़कर आश्रम लौट गए। यूथभ्रष्ट हरिणी की तरह भीत नेत्रों से चारों ओर देखकर स्वदृष्टि से चारों दिशा को कमलमय कर अनंगसुन्दरी ने नगर में प्रवेश किया। नगर में प्रवेश करते ही उसने साध्वियों से परिवृता अपनी माता-सी साध्वी-प्रमुखा सुव्रता को स्थंडिल भूमि की ओर जाते देखा। सोचने लगी ये साध्वियाँ तो वैसी ही हैं जैसा मेरे पति ने चित्रपट पर अंकित कर मुझे दिखायी थीं। ये तो पूज्य और समस्त दोषों से रहित हैं, ऐसा सोचकर अनंगसुन्दरी उनके पास गयी और उन्हें एवं अन्य साध्वियों को पति से प्राप्त शिक्षा के अनुरूप वन्दना कर करबद्ध होकर बोली, सिंहल द्वीप के अर्हत् चैत्यों की जय हो। यह सुनकर सुव्रता बोली, तुम क्या सिंहल द्वीप से आयी हो? किन्तु तुम अकेली क्यों हो? तुम्हारी आकृति से ही लगता है तुम अनुचरहीन नहीं हो। तुम्हारे अनुचर कहाँ हैं? तब अनंगसुन्दरी बोली, आप मुझे आश्रय स्थल पर ले चलें, मैं आपको सब कुछ बता दूँगी। तब सुव्रता उसे आश्रय स्थलपर ले गयी। वहाँ जब वह अन्य साध्वियों की वन्दना कर रही थी, तुम्हारी पुत्री प्रियदर्शना वहाँ उपस्थित थी। सुव्रता और प्रियदर्शना द्वारा पूछे जाने पर उसने समस्त

इतिवृत्त कह सुनाया। वह इतिवृत्त सुनकर प्रियदर्शना अनंगसुन्दरी से बोली, सुश्री, कला आदि के सम्बन्ध में तुमने जो कुछ बताया उसे सुनकर तो वे मेरे पति वीरभद्र ही लगते हैं। किन्तु उनके शरीर का रंग क्या बताया—कृष्णवर्ण ? यह मेरे पति से नहीं मिलता। तब साध्वी प्रमुखा ने अनंगसुन्दरी से कहा, प्रियदर्शना तुम्हारी स्वधर्मी है। धर्म पालन करते हुए तुम उसके साथ रहो। प्रियदर्शना ने भी स्नेह के साथ उसे ग्रहण कर लिया और तभी से वे दोनों वहाँ एक साथ रहने लगी।

उधर वीरभद्र ने भी जब जहाज तरंगों की आघात से भग्न हो गया तो एक काष्ठ फलक को कसकर पकड़ लिया। सातवें दिन विद्याधरराज रतिवल्लभ ने उसे उस अवस्था में देखा तो उसे उठाकर वैताढ्य पर्वत पर ले गया। स्वयं पुत्रहीन होने के कारण उसने अपनी पत्नी मदनमंजुषा को उसे पुत्र रूप में सौंप दिया। पूछने पर वीरभद्र ने उसे अपनी और पत्नी का समुद्र-पतन आद्योपान्त सुनाया। बोला, पिताजी समुद्ररूपी यम के मुख से आपने मुझे बचाया है किन्तु नहीं जानता अनंगसुन्दरी की क्या दशा हुयी है। तब रतिवल्लभ ने आभोगिनी विद्या द्वारा समस्त तथ्य अवगत कर उससे कहा, तुम्हारी दोनों पत्नियाँ अनंगसुन्दरी और प्रियदर्शना धर्म पालन करतीं हुयी साध्वी सुव्रता के उपाश्रय में रह रही हैं।

दोनों पत्नियों का कुशल संवाद सुनकर मानो उसकी देह अमृत से सिंचित हुयी हो इस प्रकार स्वस्ति की निःश्वास ली। जिस समय रतिवल्लभ ने उसे समुद्र से बाहर किया उसी समय वीरभद्र ने उस गुटिका का जिसके बल से उसने कृष्णवर्ण धारण किया था, निकाल लिया था अतः पुनः अपने स्वाभाविक गौरवर्ण में लौट आया। रतिवल्लभ ने अपनी पत्नी वेदवती से उत्पन्न स्वकन्या रत्नप्रभा के साथ उसका विवाह कर दिया। वीरभद्र ने भी यहाँ स्वयं का परिचय बुद्धदास कहकर दिया और रत्नप्रभा के साथ सांसारिक सुख भोग करने लगा।

एक दिन दल के दल विद्याधरों को जाते देखकर उसने अपनी पत्नी से पूछा, ये लोग इतनी शीघ्रता से कहाँ जा रहे हैं ? रत्नप्रभा ने उत्तर दिया, इस पर्वत स्थित शाश्वत जिनों का दर्शन करने जा रहे हैं।

यह सुनकर बुद्धदास पत्नी सहित पर्वत शिखर पर चढ़ा। वहाँ शाश्वत जिन की भक्तिपूर्वक पूजा की और उसकी पत्नी ने देवों के सम्मुख गीत सहित नृत्य किया। बुद्धदास ने रत्नप्रभा से कहा—ये देव मेरे लिए नवीन हैं कारण

मैं सिंहलद्वीप में रहता हूँ और हमारे कुल देवता बुद्ध हैं। यह सुनकर रत्नप्रभा बोली, मात्र इस कारण से आप कह रहे हैं ये नए हैं? वास्तव में ये देवाधिदेव सर्वज्ञ, सर्वदोषहीन, वीतराग हैं। त्रिलोक में ये ही पूज्य हैं। ये ही सच्चे देव हैं, अर्हत् हैं, भगवान् हैं। ये बुद्ध ब्रह्मादि देव नहीं हैं। वे लोग तो मनुष्य को संसार चक्र में डाल देते हैं। अक्षमालादि धारण कर वे अपना अज्ञान ही प्रकट करते हैं।

इस प्रकार सुख भोग करते हुए उन्होंने और कुछ समय बिताया।

एक दिन रात्रि के शेष याम में बुद्धदास ने रत्नप्रभा से कहा—प्रिये, आज हम भरतार्द्ध के दक्षिणार्ध में घूमने जाएँगे। उसके सम्मत होने पर वे दोनों पद्मिनीखण्ड में साध्वीप्रमुखा सुव्रता के उपाश्रय के सम्मुख विद्या-बल से उपस्थित हुए। वीरभद्र ने रत्नप्रभा से कहा, तुम जरा यहीं खड़ी रहो मैं पानी पीकर आता हूँ। यह कहकर उसे वहीं छोड़कर वह कुछ आगे गया और आड़ में खड़े होकर राजा के गुप्तचर की तरह उस पर नजर रखा। बहुत देर तक पति के नहीं लौटने पर चक्रवाकी की तरह एकाकिनी रत्नप्रभा जोर-जोर से रोने लगी। स्त्रियों का स्वभाव ही ऐसा होता है। उसका करुण क्रन्दन सुनकर करुण-हृदया साध्वी प्रमुखा सुव्रता बाहर आयीं और पूछा—वत्से तुम कौन हो? कहाँ से आयी हो? तुम अकेली क्यों हो? फिर रो क्यों रही हो? रत्नप्रभा सुव्रता को वन्दन कर बोली—आर्या, अपने स्वामी के साथ मैं यहाँ वैताढ्य पर्वत से घूमने आयी थी। वे पानी पीने गए किन्तु इतनी देर हो जाने के कारण मैं भयभीत हो गई हूँ। वे मेरे बिना एक मुहूर्त भी नहीं रह सकते। अतः विलम्ब के कारण चिन्तित होकर मैं रो रही हूँ। उष्ण भूमि पर नेवला जैसे सन्तप्त हो जाता है उसी प्रकार मैं भी सन्तप्त हो गयी हूँ। मेरे लिए तो जीवन धारण भी असह्य हो गया है। यह सुनकर सुव्रता स्नेह सिक्त कण्ठ से बोली—हे पतिगतप्राणा, भय की कोई बात नहीं है, जब तक तुम्हारे पति जल पीकर नहीं आ जाते हैं तब तक तुम इसी उपाश्रय में रहो। सुव्रता के ऐसा कहने पर रत्नप्रभा उनके साथ उपाश्रय में प्रविष्ट हुई।

वीरभद्र ने जब रत्नप्रभा को उपाश्रय में प्रवेश करते देखा तो निश्चिन्त होकर अन्यत्र चला गया और वामन रूप में कला का प्रदर्शन करते हुए नगर में घूमने लगा। क्रमशः उसकी बात राजा ईशानचन्द्र के कानों में पहुँची। राजा ईशानचन्द्र उसकी कला पर मुग्ध हो गए। जब कि एक कला ही मनुष्य को मुग्ध कर देती है तो अनेक कलाओं का तो कहना ही क्या है।

इधर अनंगसुन्दरी और प्रियदर्शना ने रत्नप्रभा को देखकर पूछा—तुम्हारे पति कौन है? और वे देखने में कैसे हैं? रत्नप्रभा बोली, मेरे पति सिंहल द्वीप निवासी गौरवर्णीय समस्त कलाओं के निधान और रूप में कामदेव जैसे हैं। उनका नाम बुद्धदास है। प्रियदर्शना बोली, सिंहल निवास और नाम बुद्धदास के अतिरिक्त मेरे पति भी ऐसे ही हैं। अनंगसुन्दरी ने कहा, गौरवर्ण निवास सिंहल और नाम बुद्धदास के अतिरिक्त मेरे पति भी ऐसे ही हैं। पति का कोई संवाद नहीं पाकर वे तीनों तीन बहिनों की तरह उसी उपाश्रय में तप और स्वाध्याय में समय व्यतीत करने लगीं और छद्मवेषी वामन प्रतिदिन अपनी तीनों पत्नियों को वहाँ आकर देख जाता। उनके शील व स्वभाव को देखकर वह आनन्दित हुआ।

एक दिन राजा ईशानचन्द्र के कानों में यह संवाद पहुँचा कि साध्वी सुव्रता के उपाश्रयमें तीन बिरहिणियाँ निवास कर रही हैं जो कि सुन्दर सुशील और तीन रत्न की तरह पृथ्वी को पवित्र कर रही हैं। सद्‌चरित्रा और सदकुल-जाता होने के कारण वे किसी पुरुष से बात नहीं करती हैं। राज सभा में यह सुनकर छद्मवेषी वह वामन बोला, मैं उनको एक एक कर तीनों को ही बात करवा सकता हूँ। राजा ने कौतूहल वश तब उसे बात कराने को कहा। वह मंत्री राज कर्मचारी और कुछ नागरिकों को लेकर साध्वी सुव्रता के उपाश्रय में गया। उपाश्रय में प्रवेश करने के पूर्व ही अपने साथियों से कहा, आप लोग वहाँ मुझे कहानी सुनाने को कहिएगा। तदुपरान्त वह उनके साथ उपाश्रय में प्रविष्ट हुआ और साध्वी सुव्रता एवं अन्यान्य साध्वियों को वन्दना कर वहाँ से कुछ दूर जाकर प्रवेश द्वार के पास बैठ गया। अद्‌भुत वामन की बात सुनकर अन्यान्य साध्वियों सहित उसकी तीनों पत्नियाँ भी कौतूहल वश उसे देखने वहाँ आयी।

[क्रमशः

संकलन

।। साधु साधुत्व की गरिमा कम न होने दें ।।

जैन साधु-साध्वियों की संख्या भले ही कम हो किन्तु जैन साधु-साध्वियों के त्याग, उनकी तपस्या, कठोर दिनचर्या के कारण वे जैनेतर समाज में भी समादरणीय हैं। पाँच महाव्रतों का आत्म साक्षी से पालन, नंगे पांव पद यात्रा, गोचरी, केशलुंचन, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह जैसी कठोर साधना जैन मुनि एवं साध्वियों को वह गरिमा प्रदान करती है जो देवत्व से भी ऊपर है।··· ऐसे महान पूज्य साधु-साध्वियों की वर्तमान स्थिति देखकर मन व्यथित हो उठता है। पाँच महाव्रतधारी साधु-साध्वी लोकेषणा, नाम यश की कामना से अपनी गरिमा कम कर रहे हैं। सारी प्रवृत्तियों का त्याग कर निवृत्ति के मार्ग को स्वीकार करनेवाले साधु-साध्वीगण घोर प्रवृत्तियों में संलग्न हैं। संस्थाएँ बना रहे हैं, भवन खड़े किये जा रहे हैं और धन संग्रह करवाया जा रहा है। कुछ खुले आम करते हैं। कुछ भाषा बदल कर करते हैं लेकिन इस दिशा में मानों होड़ मची है। अभिनंदन ग्रन्थों का प्रकाशन, मंत्रियों को बुलाकर समारोह, दूसरों से लिखवाकर पुस्तकों का प्रकाशन मानो आम बात हो गई है। सबके अपने ट्रष्ट हैं, फंड हैं और संस्थाएँ हैं। तथा सबके आगे-पीछे येन केन प्रकारेण, कमाई करने वाले सेठ भक्त हैं। कुछ देश में प्रचार कर रहे, कुछ विदेशों में जा आ रहे हैं। महाव्रतों के भंग की बात करने पर भगवान श्री महावीर की नौका यात्रा का अपनी यात्राओं के साथ उदाहरण देते एवं तुलना करते हैं। अनेक साधुओं के पास लाखों की नगदी मिली है। ब्रह्मचर्य व्रत में दोष के साक्षात प्रमाण मिले हैं। इसमें कोई एक सम्प्रदाय की बात नहीं है बल्कि कम ज्यादा सभी सम्प्रदायों की स्थिति ऐसी ही है। अनेक साधु-साध्वियां तो गृहस्थों की तरह सुख सुविधा से रहने लगे हैं लेकिन फिर भी वेशभूषा के कारण वे समाज के भोले-भाले श्रद्धालु श्रावकों के पूज्य बने बैठे हैं। संघ से कुछ निकलते हैं, निकाले जाते हैं और कुछ अपने प्रभाव से साधुपन नहीं होते हुए भी जमे बैठे है।···

हम विनम्रता एवं निर्भीकता से पूज्य साधु-साध्वियों से निवेदन करते हैं कि वे लोक-कल्याण छोड़कर पहले स्वयं का कल्याण करें। जिस उद्देश्य एवं

भावना से आपने गृहत्याग कर मुनि जीवन स्वीकारा है उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील बनें। सारी दुनिया को सुधारने का ठेका नहीं लें क्योंकि सारा संसार कभी न तो सुधरा है और न सुधरने वाला है। दूसरी बात यह भी निवेदन करना चाहते हैं कि आज का युवक आपके भाषण-प्रवचन से प्रभावित् नहीं होता बल्कि आचरण को देखता है। अतः देश काल परिस्थिति के अनुसार यदि आप अपनी समाचारी में परिवर्तन करना चाहें तो अवश्य करें किन्तु जो नियमावली या आचार संहिता एक साधु के लिए बने उसका पालन अवश्य होना चाहिए।

—चन्दनमल चाँद

जैन जगत, मार्च १९९१

पुस्तक समीक्षा

श्रीचन्द सुराना 'सरस' (सम्पादक), सचित्र भक्तामर स्तोत्र, दिवाकर प्रकाशन, आगरा, १६६० । पृष्ठ १२+४८ । मूल्य ३२५.०० ।

आलोच्य कृति "सचित्र भक्तामर स्तोत्र" अत्यन्त भक्तिपरक नयनाभिराम एवं सुन्दर काव्य-ग्रन्थ है । भक्तामर स्तोत्र एक ऐसा कालजयी प्रभावशाली स्तोत्र है जिसकी महद मान्यता श्वेताम्बर-दिगम्बर दोनों ही आम्नायों में समान रूप से अविरल चली आ रही है । अड़तालीस गाथाओं में रचित/गुंफित आचार्यवर श्री मानतुंग सूरि की यह एक अनुपम भक्तिमूलक मंगलमय कृति है । विद्वान सम्पादक श्रीचन्द सुराना के कुशल सम्पादन ने तो इस ग्रन्थ की महत्ता को पूर्णतः निखार दिया है । ग्रन्थ के आमुख पर दृष्टि पड़ते ही इसकी सारगर्भिता अनायास ही प्रस्फुटित हो उठती है कि चेलक-अचेलक, राजा-रंक सभी सम्प्रदायों यहाँ तक कि मानव-मात्र का लक्ष्य है अर्हता प्राप्त करना और उस अर्हता प्राप्ति का सबसे सहज सरल उपाय है अर्हद् भक्ति । साथ ही इस सत्य को भी नहीं नकारा जा सकता कि भक्ति के लिए चाहिए आलम्बन चाहे वह मूर्त्ति हो या चित्र ।

इस कृति में दिए गए रंगीन कलात्मक भावाभिव्यक्ति में सशक्त चित्रों पर दृष्टि पड़ते ही चित्रों का भाव जानने के लिए पाठक स्तोत्र पढ़ने को समुत्सुक हो जाता है । उत्सुकता के इस समाधान के लिए प्रवर्त्तक मुनि श्री रूपचन्द जी 'रजत' ने मूल संस्कृत गाथाओं का हिन्दी अनुवाद तथा श्री सुरेन्द्र बोथरा ने अंग्रेजी अनुवाद देकर सहज एवं बोधगम्य बनाकर सूक्ष्म भावाभिव्यक्ति तक पहुँचने में पाठकों को समर्थ बना दिया है ।

कृति की साज-सज्जा, रंग सज्जा, सम्पादन, चित्रांकन सभी कुछ सुन्दर एवं अभिनव है ।

मुनि कान्तिसागर, शत्रुंजय वैभव, कुशल संस्थान, जयपुर, १६६० । पृष्ठ २६ + ३८५ । मूल्य सजिल्द १२५.०० ; अजिल्द १००.०० ।

समीक्ष्य कृति 'शत्रुंजय वैभव' सुप्रसिद्ध पुरातत्वविद् एवं इतिहासज्ञ मुनिवर्य श्री कान्तिसागर जी द्वारा लिखित एक अपूर्व एवं महत्वपूर्ण सन्दर्भ

ग्रन्थ है। इतिहास वेत्ता श्री रामवल्लभ सोमानी ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में अपने शत्रुंजय परिचय में शत्रुंजय तीर्थ का हूबहू वर्णन करते हुए इसके जीर्णोद्धार, संघयात्राओं की परम्परा एवं अन्य साक्ष्यों की भी शोधपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की है।

ग्रन्थ की प्रमुख एवं उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इसमें केवल प्रतिमाओं के लेखों का ही संकलन नहीं अपितु प्रतिष्ठापक आचार्यों, मुनिवरों एवं श्रावकोंका भी शोधपूर्ण परिचय के साथ-साथ उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का भी प्रामाणिक वर्णन है। यह वर्णन प्रतिपादित करता है कि हमारे आत्माभिमुख जैन मुनि साहित्य सृजन में भी बेजोड़ रहे हैं एवं उन्होंने कला की भी किस मुक्त रूप से उपासना की है।

पुस्तक के अन्त में धर्माचार्यों की वैयक्तिक या परम्परामूलक स्वाध्याय पुस्तिकाओं एवं गच्छों का भी सुन्दर परिचय दिया है। परिशिष्ट ४ में गोत्र सूची, ५ में नगर सूची, ६ में अन्य लेख संग्रह आदि देकर शोधार्थिओं के लिए परम उपयोगी बनाया है।

—श्रीमती राजकुमारी बेगानी

जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या

अनेकान्त || अक्टूबर-दिसम्बर १९९०

इस अंक में है 'कन्नड़ के जैन साहित्यकार' (राजमल जैन), 'अज्ञात जैन कवि हरिसिंह का काव्य' (गंगाराम गर्ग), 'आ० अमृतचन्द्र का २३वाँ कलश' (एम० एल० जैन), 'संस्कृत जैन काव्यशास्त्री और उनके ग्रन्थ' (कपूरचन्द खतौली), 'महेवा का जैन मन्दिर' (नरेश कुमार पाठक), 'उद्देशिक आहार' (बाबूलाल जैन), 'केन्द्रीय संग्रहालय गूजरी महल ग्वालियर में संरक्षित छठे तीर्थंकर पद्मप्रभ की प्रतिमाएँ' (नरेश कुमार पाठक), 'जैन की पहीचान : अपरिग्रह' (पद्मचन्द शास्त्री)।

जय कल्याणश्री || नवम्बर ९० मार्च १९९१

सम्पादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'धर्म निरपेक्ष महामन्त्र : णमोकार' (आ० श्री कल्याण सागर), 'णमोकार महामन्त्र : परमेष्ठियों का समुच्चय' (आ० श्री देशभूषण), 'णमोकार मन्त्र' (आ० श्री विद्यानन्द), 'नमस्कार सूत्र' (उपाध्याय श्री अमरमुनि), 'नमस्कार मन्त्र' (माँ श्री कौशल), 'णमोकार महामन्त्र : आओ विचार करें ?' (डा० अदित्य प्रचण्डिया), 'जितनी साधना : उतनी सिद्धि' (यशपाल जैन), 'मंगलाचरण : णमोकार मन्त्र' (पं० कैलाशचंद्र शास्त्री), 'साहू तेरे तीन रूप' (डा० महेन्द्र सागर प्रचण्डिया), 'मनोविज्ञान और णमोकार मन्त्र' (डा० नेमीचन्द्र जैन), 'नमस्कार महामन्त्र तथा वर्ण मातृकाएँ' (डा० रूद्रदेव त्रिपाठी), 'आत्मविकास का मार्गदर्शक णमोकार महामन्त्र' (डा० अलका प्रचण्डिया), 'णमोकार मन्त्र की प्रासंगिकता' (अभय प्रकाश जैन), 'राष्ट्रीय एकता में णमोकार महामन्त्र की भूमिका' (डा० राजेन्द्र कुमार वंशल); 'वनस्पतियों पर णमोकार महामन्त्र का प्रभाव' (परितोष प्रचण्डिया), 'णमोकार मन्त्र का चिन्तन व ध्यान' (महेन्द्र कुमार 'महेश'), 'पर्यावरण, प्रदूषण और णमोकार महामन्त्र' (राजीव प्रचण्डिया), 'सद् संस्कारों का जागरण णमोकार महामन्त्र' (अर्चना प्रचण्डिया)।

णाणसायर || दिसम्बर १९९०

इस अंक में है 'परमेष्ठी : आद्यमंगल' (सहजानन्द वर्णी), 'पंचपरमेष्ठी नमस्कार स्तोत्र', 'पंचपरमेष्ठी गुण वर्णन', 'पंचनमस्कृति स्तवनं', 'उमास्वामी कृत

पंचनमस्कार स्तोत्रम्', 'श्रीमानतुंगाचार्य विरचितं नमस्कार मन्त्र स्तवनम्', 'मन्त्र साधन विधि', 'णमोस्कार मंत्र व्रत', 'उपवास विधि', 'जाप्य विधि', 'आसन विधि' (आ० श्री देशभूषण), 'परमेष्ठी वन्दन—काटे भव बन्धन' (आ० श्री तुलसी), 'नमस्कार महामन्त्र : एक चिन्तन' (उ० श्री देवेन्द्र मुनि), 'णमोकार-महात्म्य सम्बन्धी कुछ उद्धरण' (कुन्दनलाल जैन), 'मन्त्र और मातृकाएँ' (डा० रवीन्द्र कुमार जैन), 'महामन्त्र णमोकार और ध्वनि विज्ञान' (डा० रवीन्द्र कुमार जैन), 'महामन्त्र एवं मंगलमन्त्र : णमोकार' (प्रो० लक्ष्मीचन्द्र जैन), 'मृत्युञ्जय महामन्त्र : णमोकार' (डा० अर्हद्दास बी० दिगे)।

श्रमण ।। अक्टूबर-दिसम्बर १६६०

इस अंक में है 'जैन धर्म में नारी की भूमिका' (डा० सागरमल जैन), 'क्षेत्रज्ञ शब्द के विविध रूपों की कथा और उसका अर्धमागधी रूपान्तर' (डा० के० आर० चन्द्र), 'हरिभद्र की श्रावक प्रज्ञप्ति में वर्णित अहिंसा : आधुनिक सन्दर्भ में' (अरुण प्रताप सिंह), 'ईश्वरत्व : जैन और योग : एक तुलनात्मक अध्ययन' (डा० ललितकिशोर लाल श्रीवास्तव), 'जैन आगम साहित्य में वर्णित दास-प्रथा' (डा० इन्द्रेशचन्द्र सिंह), 'जैनाचार्य राजशेखर-सूरि : व्यक्तित्व एवं कृतित्व' (डा० अशोक कुमार सिंह), 'शाजापुर का पुरातात्विक महत्व' (डा० कृष्णदत्त वाजपेयी)।

जैन भवन प्रकाशन

हिन्दी

१.	अतिमुक्त (२य संस्करण)—श्री गणेश ललवानी अनु : श्रीमती राजकुमारी बेगानी	८.००
२.	श्रमण संस्कृति की कविता—श्री गणेश ललवानी अनु : श्रीमती राजकुमारी बेगानी	३.००
३.	नीलांजना—श्री गणेश ललवानी अनु : श्रीमती राजकुमारी बेगानी	१२.००
४.	चन्दन मूर्त्ति—श्री गणेश ललवानी अनु : श्रीमती राजकुमारी बेगानी	२०.००
५.	चिदानन्द ग्रन्थावली—श्री केशरीचन्द धूपिया	५.००
६.	भगवान महावीर (एलवम्)	१०.००

বাংলা

১.	অতিমুক্ত	—শ্রীগণেশ লালওয়ানী	৪.০০
২.	শ্রমণ সংস্কৃতির কবিতা	—শ্রীগণেশ লালওয়ানী	৩.০০
৩.	ভগবান মহাবীর ও জৈন ধর্ম	—শ্রীপূরণচাঁদ শ্যামসুখা	২.০০

English

1.	Bhagavati Sutra (Text with English Translation) —Sri K. C. Lalwani	
	Vol. I (Satak 1-2)	40.00
	Vol. II (Satak 3-6)	40.00
	Vol. III (Satak 7-8)	50.00
	Vol. IV (Satak 9-11)	70.00
2.	The Temples of Satrunjaya —James Burgess	50.00
3.	Essence of Jainism—Sri P. C. Samsukha tr. by Sri Ganesh Lalwani	1.50
4.	Thus Sayeth Our Lord —Sri Ganesh Lalwani	1.50
5.	Verses from Cidananda—tr. by Sri Ganesh Lalwani	5.00

पी-२५ कलाकार स्ट्रीट : कलकत्ता-७००००७

LODHA MOTORS

A House of Telco Genuine Spare Parts and
Govt. Order Suppliers.
Also Authorised Dealers of Pace-setter and
Nicco Batteries in Nagaland State.

CIRCULAR ROAD, DIMAPUR
NAGALAND

Phone : 3039, 3174

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :
4 Meer Bohar Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 38-5960

Branch Office :
Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 5378
5578, 5778

तित्थयर

वर्ष १४

मई १९९० से अप्रैल १९९१

कथानक

	कपिल	२४२
	चित्र और संभूत	३०५
	नन्दीसेन	१७०
हेमचन्द्राचार्य	त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र	२२, ५४, ८५, ११४, १५०, १८३, २१४, २४५, २७५, ३१०, ३४५, ३६४
	जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या	
	जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या	३१, ६३, ९५, १२७, १५९, १९१, २२३, २५५, २८७, ३१८, ३५१, ३७७

निबन्ध

	असम में जैन धर्म	२७३
	उड़ीसा में जैन धर्म	२५९
चौधुरी, गुलाबचन्द	पालि भाषा के बौद्ध ग्रन्थों में जैन धर्म	१३९

जैन, ऋषभचंद्र, फौजदार	नियमसार के कतिपय विचारणीय प्रसंग	२२७
जैन, कुन्दनलाल	ऐतिहासिक शिल्पी चागद वम्भदेव	६७
—	भगवान शान्तिनाथ के परम भक्त पाड़ा साह	३३६
जैन, फूलचंद 'सारंग'	जैनकथा साहित्य	१०४
जैन, भागचंद्र	विभज्जवाद और अनेकान्तवाद	१६३
जैन, महेन्द्रकुमार 'मनुज'	राजगृह शिल्प में अष्टमातृकाएँ	६६
जैन, सागरमल	पार्श्वनाथ जन्मभूमि मन्दिर, वाराणसी का पुरातत्त्वीय वैभव	२०४
नाहटा, अगरचन्द	जैन आगम औपपातिक सूत्र का सांस्कृतिक अध्ययन	३५
भारद्वाज, प्रवेश	प्रबन्धकोश का ऐतिहासिक विवेचन	३५५
मेहता, मोहनलाल	क्या व्याख्या प्रज्ञप्ति का पन्द्रहवाँ शतक प्रक्षिप्त है ?	७८
रजन कुमार	जैन दर्शन में इन्द्रिय अवधारणा	४७
रमणीक विजय, पन्यास	पू० उपाध्याय श्री मेघविजयजी गुम्फिता अर्हद्गीता	
शास्त्री, नेमीचन्द्र	कवीश्वर मानतुंग	१६५
—	जैन दर्शन में शब्द का पौद्गलिकत्व प्रतिपादन	२३३
—	णमोकार मन्त्र और मनोविज्ञान	७०
—	सोमदेव का राजनैतिक विवेचन	३२३
—	हिन्दी जैन साहित्य में अलंकार योजना	२६१
शाह, उमाकान्त पी०	प्राचीन जैन साहित्य में मुद्रा सम्बन्धी विवरण	११
संगवे, विलास ए०	जैनों का सामाजिक इतिहास	१३१
सिंह, त्रिवेणी प्रसाद	शरीर संरचना के आधार पर मानव व्यक्तित्व का वर्गीकरण	१७५

पुस्तक समीक्षा

बेगानी राजकुमारी	शत्रुंजय वैभव [मुनि कान्तिसागर]	३७५
—	सचित्र भक्तामर स्तोत्र [श्रीचन्द सुराना 'सरस']	३७५

संकलन

अमरमुनि, उपाध्याय	आश्रव व संवर	२८६
—	माधुर्य का महापर्व अक्षय तृतीया	६१
—	यह साधना है या यातना	१८६
चन्दनमल चाँद	अहिंसा का प्रचार नहीं प्रयोग प्रस्तुत करें	२५४
—	तप तो कर्म निर्जरा एवं आत्म-शुद्धि के लिए है	६३
—	सच्ची श्रद्धांजलि	२६
—	साधु-साधुत्व की गरिमा कम न होने दें	३७३
जैन, प्रेम सुमन	प्राकृत शिक्षण शिविर	३०
जैन, विद्युत	बालकों में धार्मिक प्रवृत्ति और माता	१६०
भंडारी, पुखराज	दिशाहीन जैन साधु-समाज	६१
—	राजर्षि विश्वमित्र और काम विजेता स्थूलिभद्र	१२५
भानावत, नरेन्द्र	आत्म-शक्ति की उपासना का पर्व पर्यूषण	१५८
—	शिक्षा का व्यावहारिक पक्ष	१२५
रातड़िया, प्रकाश	तपस्या के साथ समारोह का औचित्य	२२१
लूंकड़, पुखराजमल एस.	विवेक ही धर्म है	३१७
शुभ्रयशा, साध्वी	५० करोड़ की लागत से मीट टेकनोलाजी	६३
हर्षचन्द्र	जैनत्व पर बढ़ते खतरे	२८

चित्र

कायोत्सर्ग मुद्रा में पार्श्वनाथ धन्यन्तरीर डांगा	३५४
गोपियों के साथ कृष्ण, देलवाड़ा माउण्ट आबु	२
चौमुख, लच्छीपुर के निकट कंसावती नदी से प्राप्त	२६०
जैन अष्ट मातृकाएँ, राजगीर	६८
तीर्थंकर, श्रवण वेलगोल	१६४
देव-देवियाँ, आध्यात्मिक उद्योत माउन्ट आबु	३४
भगवान ऋषभनाथ, सुरोहर, राजशाही	१३०
महावीर की कांस्य प्रतिमा, राजगार्ड म्युजियम्, बुलगेरिया	२२६
महावीर, वैभारगिरि, राजगीर	६६
राजाओं को सम्बोधित करते हुए महावीर, कंकाली टीला, मथुरा	१६२
सूर्य पहाड़ स्थित तीर्थंकर मूर्तियाँ, असम	२५८

WB/NC-253

Vol. XIV No. 12 TITTHAYARA April 1991

Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 24582/73

बनारसी साड़ी

इण्डियन सिल्क हाउस

कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२